

इत्थं श्रीजिनभाषितं शुभतरं ज्ञात्वा सुशास्त्रं बुधैस्त्यक्त्वा मोहविधायकं भयकरं त्रेधा प्रमादं सदा ।
धर्म्यं कर्मणि शर्मकोटिजनके संज्ञातदानादिके भक्त्या श्रीजिनपूजने शुभतरे कार्या मतिः श्रेयसे ॥१६॥

इति कथाकोशे व्यंजनार्थहीनाख्यानं समाप्तम् ।

१६. हीनाधिकाक्षराख्यानम्

नत्वा जिनं जगत्युज्यं केवलज्ञानलोचनम् । हीनाधिकाक्षराख्यानं प्रवक्ष्ये भव्यरञ्जनम् ॥१॥
सुराष्ट्रविषये श्रीमदूर्जयन्तमहागिरौ । श्रीमच्चन्द्रगुहामध्ये जैनतत्त्वाब्धिचन्द्रमाः ॥२॥
धरसेनो महाचार्यो ज्ञात्वा स्तोत्रं स्वजीवितम् । अविच्छित्तिनिमित्तं च शास्त्रस्योच्चैर्विचक्षणः ॥३॥
आन्ध्रदेशे सुविख्याते वेनातटपुरे परे । जिनयात्रासमायातमहाचार्यान्प्रति द्रुतम् ॥४॥
प्राज्ञौ कृतार्थतां प्राप्तौ नूतनौ द्वौ स्थिरौ मुनी । सिद्धान्तोद्धारणे योग्यौ प्रेषणीयौ मदन्तिके ॥५॥
दत्त्वा लेखमिति व्यक्तं स्वकीयं ब्रह्मचारिणम् । प्रेषयामास पूतात्मा जैनधर्मधुरन्धरः ॥६॥
तं लेखं तैः समालोक्य मुनीन्द्रैस्तुष्टमानसैः । तथाभूतौ मुनी भक्तौ प्रोल्लसद्भर्मरागिणौ ॥७॥
पुष्पदन्ताख्यभूतादिबलिसंज्ञौ गुणोज्ज्वलौ । प्रेषितौ परया भक्त्या सिद्धान्तोद्धारणे क्षमौ ॥८॥

मोह उत्पन्न करने वाले प्रमाद को न कर सुख देने वाले जिनपूजा, दान, व्रत, उपवासादि धार्मिक कामों में अपनी बुद्धि को लगाकर केवलज्ञान का अनन्तसुख प्राप्त करेंगे ॥१६॥

१६. हीनाधिक अक्षर की कथा

उन जिन भगवान् को नमस्कार कर, जिनका कि केवलज्ञान एक सर्वोच्च नेत्र की उपमा धारण करने वाला है, न्यूनाधिक अक्षरों से सम्बन्ध रखने वाली धरसेनाचार्य की कथा लिखी जाती है ॥१-२॥

गिरनार पर्वत की एक गुफा में श्रीधरसेनाचार्य, जो कि जैनधर्मरूप समुद्र के लिए चन्द्रमा की उपमा धारण करने वाले हैं, निवास करते थे। उन्हें निमित्तज्ञान से जान पड़ा कि उनकी उमर बहुत थोड़ी रह गई है। तब उन्हें दो ऐसे विद्यार्थियों की आवश्यकता पड़ी कि जिन्हें वे शास्त्रज्ञान की रक्षा के लिए कुछ अंग्गादि का ज्ञान करा दें। आचार्य ने तब तीर्थयात्रा के लिए आन्ध्रदेश के वेनातट नगर में आए हुए संघाधिपति महासेनाचार्य को एक पत्र लिखा। उसमें उन्होंने लिखा— ॥३-४॥

“भगवान् महावीर का शासन अचल रहे, उसका सब देशों में प्रचार हो। लिखने का कारण यह है कि कलियुग में अंग्गादि का ज्ञान यद्यपि न रहेगा तथापि शास्त्रज्ञान की रक्षा हो, इसलिए कृपाकर आप दो ऐसे बुद्धिमान् विद्यार्थियों को मेरे पास भेजिये, जो बुद्धि के बड़े तीक्ष्ण हों, स्थिर हों, सहनशील हों और जैनसिद्धान्त का उद्धार कर सकें ॥५-६॥

आचार्य ने पत्र देकर एक ब्रह्मचारी को महासेनाचार्य के पास भेजा। महासेनाचार्य उस पत्र को पढ़कर बहुत खुश हुए। उन्होंने तब अपने संघ में से पुष्पदन्त और भूतबलि ऐसे दो धर्मप्रेमी और सिद्धान्त के उद्धार करने में समर्थ मुनियों को बड़े प्रेम के साथ धरसेनाचार्य के पास भेजा। ये दोनों

तयोरागमने पूर्व सूरिः पश्चिमसन्निधिः। स्वप्ने शुभतरौ दिव्यौ नूतनौ वृषभोत्तमौ ॥९॥
 पतन्तौ पादयोः स्वस्य दृष्ट्वा सद्भक्तिनिर्भरौ। धरसेनो महाचार्यः प्रोल्लसत्प्रमदान्वितः ॥१०॥
 सर्वसंदेहसन्दोहध्वंसिनी श्रुतदेवता। जयत्वत्र सतां नित्यं वदन्निथं समुत्थितः ॥११॥
 प्रभाते तौ समायातौ द्वौ मुनी भक्तिपूर्वकम्। नत्वा तत्पादपद्मं च संस्तुतिं चक्रतुर्मुदा ॥१२॥
 दिनत्रयं गुरुः सोपि तयोः कृत्वा यथोचितम्। हीनाधिकाक्षरे पूर्व विद्ये साधयितुं तदा ॥१३॥
 परीक्षार्थं सुधीस्ताभ्यां ददाति स्म विचक्षणः। तौ समादाय तौ मन्त्रौ गिरौ रैवतके शुभे ॥१४॥
 श्रीमन्नेमिजिनेन्द्रस्य शुभे सिद्धशिलातले। मुनी साधयितुं धीरौ प्रवृत्तौ शुद्धमानसौ ॥१५॥
 हीनाक्षरेण संयुक्तां विद्यां साधयतो मुनेः। काणादेवी समायाता परस्योद्भूतुरा मुनेः ॥१६॥
 देवतानां विरूपत्वं नेदृशं भवति ध्रुवम्। मनसीत्थं विचार्येति मन्त्रव्याकरणेन च ॥१७॥
 न्यूनाधिकाक्षरं ज्ञात्वा कृत्वा मन्त्रविशुद्धिताम्। तयोः साधयतो युक्त्या विद्यादेव्यौ समागतौ ॥१८॥
 ततस्तौ द्वौ समागत्य गुरोः पार्श्वे सुभक्तितः। देवतादर्शनस्योच्चैः प्रोचतुश्चारुवृत्तकम् ॥१९॥

मुनि जिस दिन आचार्य के पास पहुँचने वाले थे। उसकी पिछली रात को धरसेनाचार्य को एक स्वप्न देख पड़ा। स्वप्न में उन्होंने दो हृष्टपुष्ट, सुडौल और सफेद बैलों को बड़ी भक्ति से अपने पाँवों में पड़ते देखा। इस उत्तम स्वप्न को देखकर आचार्य को जो प्रसन्नता हुई वह लिखी नहीं जा सकती। वे ऐसा कहते हुए, कि सब सन्देहों के नाश करने वाली श्रुतदेवी-जिनवाणी सदा काल इस संसार में जल लाभ करे, उठ बैठे। स्वप्न का फल उनके विचार अनुसार ठीक निकला। सबेरा होते ही दो मुनियों ने जिनकी कि उन्हें चाह थी, आकर आचार्य के पाँवों में बड़ी भक्ति के साथ अपना सिर झुकाया और आचार्य की स्तुति की। आचार्य ने तब उन्हें आशीर्वाद दिया-तुम चिरकाल जीकर महावीर भगवान् के पवित्र शासन की सेवा करो। अज्ञान और विषयों के दास बने संसारी जीवों को ज्ञान देकर उन्हें कर्तव्य की ओर लगाओ। उन्हें सुझाओ कि अपने धर्म और अपने भाइयों के प्रति जो उनका कर्तव्य है उसे पूरा करें ॥७-१२॥

इसके बाद आचार्य ने उन दोनों मुनियों को दो-तीन दिन तक अपने पास रखा और उनकी बुद्धि, शक्ति, सहनशीलता, कर्तव्य बुद्धि का परिचय प्राप्त कर दोनों को दो विद्याएँ सिद्ध करने को दीं। आचार्य ने उनकी परीक्षा के लिए विद्या साधने के मन्त्रों के अक्षरों को कुछ न्यूनाधिक कर दिया था। आचार्य की आज्ञानुसार ये दोनों गिरनार पर्वत के एक पवित्र और एकान्त भाग में भगवान् नेमिनाथ की निर्वाण शिला पर पवित्र मन से विद्या सिद्ध करने को बैठे। मंत्र साधन की अवधि जब पूरी होने को आई तब दो देवियाँ उनके पास आयी। उन देवियों में एक देवी तो आँखों से अन्धी थी और दूसरी के दाँत बड़े और बाहर निकले हुए थे। देवियों के ऐसे रूप को देखकर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। इन्होंने सोचा देवों का तो ऐसा रूप होता नहीं, फिर यह क्यों? तब उन्होंने मंत्रों की जाँच की, मंत्रों को व्याकरण से उन्होंने मिलाया कि कहीं उनमें तो गलती न रह गई हो? इनका अनुमान सच हुआ। मंत्रों की गलती उन्हें भास गई फिर उन्होंने उन्हें शुद्ध कर जपा। अब की बार

तत्समाकर्ण्य योगीन्द्रो धरसेनो गुणोज्ज्वलः। तुष्टस्तौ पाठयामास जैनसिद्धान्तसञ्चयम् ॥२०॥
 पठित्वा च मुनीन्द्रौ तौ गुरोः सेवाविधायिनौ। जातौ सिद्धान्तकर्तारौ जैनधर्मधुरन्धरौ ॥२१॥
 एतैर्यथा मुनीन्द्रैस्तु शास्त्रोद्धारो कृतो भुवि। तथा ह्यन्यैर्महाभव्यैः कार्योसौ धर्मवत्सलैः ॥२२॥
 स श्रीमान्धरसेनामसुगुरुः श्रीजैनसिद्धान्त-सद्वाद्धीदुर्धरपुष्पदन्तसुमुनिः श्रीभूतपूर्वो बलिः।
 एते सन्मुनयो जगत्त्रयहिताः स्वर्गामरैरर्चिताः कुर्युर्मै जिनधर्मकर्मणि मतिः स्वर्गापवर्गप्रदे ॥२३॥

इति महामुनीनामाख्यानं समाप्तम्।

९७. सुव्रतमुनेराख्यानम्

श्रीजिनं सर्वदेवेन्द्रसमर्चितपदद्वयम्। नत्वा सुव्रतयोगीन्द्रवृत्तं वक्ष्ये हतामयम् ॥१॥
 सुराष्ट्रविषये रम्ये द्वारावत्यां महापुरि। हरिवंशे समुत्पन्नः कृष्णनामान्तिमो हरिः ॥२॥
 सत्यभामादिसद्राज्ञीसमूहे प्राणवल्लभः। त्रिखण्डेशो महीनाथ-सहस्रैः परिसेवितः ॥३॥
 एकदासौ महाराजः श्रीमन्नेमिजिनेशिनः। समवादिसृतिं गच्छन्वन्दनार्थं सुखप्रदाम् ॥४॥

दो देवियाँ सुन्दर वेष में उन्हें दीख पड़ी। गुरु के पास आकर तब उन्होंने अपना सब हाल कहा। धरसेनाचार्य उनका वृत्तान्त सुनकर बड़े प्रसन्न हुए। आचार्य ने उन्हें सब तरह योग्य पा फिर खूब शास्त्राभ्यास कराया। आगे चलकर यही दो मुनिराज गुरुसेवा के प्रसाद से जैनधर्म के धुरन्धर विद्वान् बनकर सिद्धान्त के उद्धारकर्ता हुए। जिस प्रकार उन मुनियों ने शास्त्रों का उद्धार किया उसी प्रकार अन्य धर्मप्रेमियों को भी शास्त्रोद्धार या शास्त्रप्रचार करना उचित है ॥१३-२२॥

श्रीमान् धरसेनाचार्य और जैनसिद्धान्त के समुद्र श्री पुष्पदन्त और भूतबलि आचार्य मेरी बुद्धि को स्वर्ग-मोक्ष का सुख देने वाले पवित्र जैनधर्म में लगावें; जो जीव मात्र का हित करने वाले और देवों द्वारा पूजा किए जाते हैं ॥२३॥

९७. सुव्रत मुनिराज की कथा

देवों द्वारा जिनके पाँव पूजे जाते हैं, उन जिन भगवान् को नमस्कार कर सुव्रत मुनिराज की कथा लिखी जाती है ॥१॥

सौराष्ट्र देश की सुन्दर नगरी द्वारका में अन्तिम नारायण श्रीकृष्ण का जन्म हुआ। श्रीकृष्ण की कई स्त्रियाँ थीं, पर उन सबमें सत्यभामा बड़ी भाग्यवती थी। श्रीकृष्ण का सबसे अधिक प्रेम उसी पर था। श्रीकृष्ण अर्धचक्री थे, तीन खण्ड के मालिक थे। हजारों राजा-महाराजा उनकी सेवा में सदा उपस्थित रहा करते थे ॥२-३॥

एक दिन श्रीकृष्ण नेमिनाथ भगवान् के दर्शनार्थ समवसरण में जा रहे थे। रास्ते में इन्होंने तपस्वी श्रीसुव्रत मुनिराज को सरोग दशा में देखा। सारा शरीर उनका रोग से कष्ट पा रहा था। उनकी यह दशा श्रीकृष्ण से न देखी गई धर्म प्रेम से उनका हृदय अस्थिर हो गया। उन्होंने उसी समय एक जीवक नाम